बृहद्नेपाल की बृहद् गाथा

ए.सी. सिन्हा*

वर्तमान, दशक नेपाल के लिए अस्थिरता का दशक रहा है। सरकारें बनती हैं और शीघ्र ही उनका विरोध और प्रतिरोध होने लगता है। विभिन्न दलों के घटक परस्पर विरोधी बयानबाजी करते हैं। कभी-कभी इन दलों के कर्णधार दिल्ली की तरफ दौड़ते हैं: सलाह-मशवरे होते हैं। समझौतों की बातें होती हैं। सरकारी की गाड़ी आगे खिसकती है। परन्तु प्रतिरोध और विरोध चलते रहते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में प्रशासन प्रायः ढप्प है। अराजकता बढ़ती जा रही है। विकासकार्य रुके पड़े हैं। आवागमन के साधन क्षत-विक्षत अवस्था में हैं। राजशाही का अन्त तो हुआ, परन्तु जनतंत्र की प्रसवपीड़ा समाप्त नहीं हुई। अपने निकम्मेपन और नपुंसकता को छिपाने के क्रम में नेपाल का एक मुखर राजकीय तबका भारत विरोधी बयानबाजी करते नहीं थकता। जब-जब नेपाल में राजकीय अस्थिरता उभरती है उसके कुछ नेताओं को भारत के तथा-कथित विस्तारवाद की याद आती है भारतीय समाचार पत्रों के अनुसार (यथा The Asian age, January 11 and January 17, 2010) नेपाल की संयुक्त साम्यवादी पार्टी (माओवादी) ने सुदूर पश्चिमोत्तर के कालापानी, कंचनपुर, बराज, और दक्षिणी तराई के नवलपरासी के 'सस्ता जंगलों' में तथाकथित भारतीय अतिक्रमण के विरुद्ध प्रदर्शन करने का निर्णय लिया। भारतीय विदेश मन्त्री श्री एस. एम कृष्णन ने अपने तीन दिवसीय नेपाल यात्रा के क्रम में माओवादी नेता और पूर्व प्रधानमंत्री पुष्प कमल दहाल 'प्रचंड' से उनके दल द्वारा आधारहीन आरोप मढ़ने पर भारतीय संघ की क्षुब्धता व्यक्त की। प्रायः देखा गया है कि नेपाल का एक अधकचरा प्रबुद्ध वर्ग अपने तथा-कथित भारतीय विस्तारवाद के विरोध की आड़ में महानेपाल या वृहत्नेपाल का सपना पालता रहा है। ऐसे लोगों की मान्यता रही है कि हिमाचल प्रदेश से सिक्कम तक का हिमालयी क्षेत्र नेपाल के रहे थे और भारतीय संघ ने उन क्षेत्रों पर

* प्रो. ए.सी. सिन्हा, भूतपूर्व अध्यक्ष, समाजविज्ञान संकाय, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग-793022; सम्पर्क : डी 7/7331, बसन्त कुन्ज, नई दिल्ली-110070

अनधिकृत कब्जा जमा रखा है। यही नहीं, उनका यह नैतिक दायित्व है कि उन क्षेत्रों को भारतीय संघ से पुनः प्राप्त करें। पिछले तीन-चार दशकों से नेपाल में महानेपाल की बातें उठती रही हैं। आखिर इस विचार या नारे के पीछे की वास्तविकता क्या है?

महानेपाल की ऐतिहासिकता

प्रायः 'नेपाल' शब्द 'नेवार' (नेपाल या काठमांडु घाटी की एक प्रजाति विशेष) का पर्याय माना जाता है और उसका तात्पर्य काठमांडु-घाटी से ही रहा है। आज से आठ दशक पूर्व आजका नेपाल गोरखा राज्य, उसकी भाषा गोरखाली या खाशकुरा और नेपाल नरेश गोरखा नरेश के रूप में जाने जाते थे। प्राचीन काल में यहाँ किरात समूह की गणजातियाँ जीवन-यापन करती थीं। यों तो गौतम बुद्ध, बौद्धधर्म और सम्राट अशोक को भारत और नेपाल में बाँटना जरा कठिन है परन्तु ऐतिहासिकता तो यह है कि नेपाल का तराई क्षेत्र और उत्तर भारत का इतिहास, भूगोल और प्रजातियाँ एक दूसरे में घुलीमिली हैं। कालांतर में दक्षिण-पूर्वी नेपाल मिथिला का क्षेत्र रहा है। पश्चिमी नेपाल उत्तरांचल की खश प्रजातियों से जुड़ा था। मुगल काल की अवनति के समय आधुनिक नेपाल में 'चौबीसी', बाइसी और (काठमांडू घाटी के) मल्लवंशी प्रायः चार दर्जन छोटे-बड़े रजवाड़े थे। 'गोरखा' उनमें एक छोटा-सा राज्य था, जिसका एक प्रशासक, पृथ्वी नारायण (1728-1775), पराक्रमी, दूरदर्शी और युद्ध कौशल का धनी था। उसने एक लड़ाकू, शक्तिशाली और महान नेपाल के निर्माण के क्रम में विभिन्न रजवाड़ों को परास्त कर एक केन्द्रीकृत गोरखा राज्य की स्थापना काठमांडू में की। अपने नवजात पराक्रम की वैधानिता के पक्ष में उसने नाम मात्र के तत्कालीन मुगल बादशाह से 'शाह' की पदवी प्राप्त की। उसने अपने सभासदों की काजी, दीवान, सुब्बा, राय आदि नामकरणों से आलंकृत किया। पृथ्वीनारायण शाह ने मुगल प्रशासित भारत को 'मुगलान' (मुगलों और कालांतर में अंग्रेजों द्वारा दूषित) तथा नेपाल को 'असल हिन्दुस्तान' बताकर उसे चार वर्णो और 36 जातियों की फुलवारी की संज्ञा दी। उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों ने अगले तीन दशकों में गोरख राज्य की सीमा पश्चिम में सतलज नदी से लेकर पूरब से तीस्ता नदी तक फैला दी। इस गोरखा विस्तारवाद की टक्कर भारत में औपनिवेशिक अंग्रेजी राज्य से 1813 में हुई।

कहते हैं कि काफी कठिनाई के बाद अंग्रेजी सेना गोरखाओं को परास्त कर पाई। कालांतर में 2 दिसम्बर, 1815 को गोरखाराज्य और अंग्रेजों के बीच सुगौली की संधि हुई, जिसके अनुसार गोरखा नरेश को 105,000 वर्ग किलोमीटर के विजित क्षेत्रों को खाली करना पड़ा और गोरखा राज्य की सीमा 140 हजार किलोमीटर में सिमटकर रह गई। फलस्वरूप उन्हें पश्चिम में गढ़वाल और कुमायूँ, दक्षिण में अवध के तराई वाले जनपद और पूरब में मेची नदी से पूरब का सिक्किमी भाग अंग्रेजों को सौंपना

पड़ा। परन्तु स्मरणीय है कि गढ़वाल में 11 साल (1804-1814) कुमाँयू में 25 साल, और सिक्किम में मात्र 33 साल गोरखा राज्य का वर्चस्व रहा। गोरखा सेना इन क्षेत्रों में काफी अपयश छोड़ गई थी। इन क्षेत्रों में गोरखा सेना श्रद्धा के साथ नहीं, अपितु अत्याचारी के रूप में याद की जाती है। फिर भी नेपाल के एक वर्ग के मानसिक पटल पर फोर्ट कांगड़ा, 'मलाना', 'नालापानी', 'जोराथांग' आदि स्थानों पर, जहाँ गोरखा सेना ने निर्णायक संघर्ष किया था तथा प्रदर्शित युद्ध कौशल के-कृत्य छाए हुए हैं और गाहे-ब-गाहे ये लोग इन सभी क्षेत्रों को नेपाल का खोया हुआ प्रदेश मान उसकी वापसी का दिवास्वप्न देखते हैं। यह एक प्रकार की परम्परागत औपनिवेशक और विस्तावादी सोच है जिसमें प्रभावित जन समूह की मानसिकता का कोई स्थान नहीं होता।

हिमालयी क्षेत्र में नेपाली उपस्थिति

जॉन हेल्पटन के अनसार 1931 तक नेपाल को गोरखा राज्य, उसके सैनिको को गोरखा सैनिक और उसकी भाषा गोरखाबोली कहा जाता था। गोरखा राज्य का प्रशासन हिन्दू धर्मशास्त्रीय आधार पर 'मुल्की आइन' (Civil Code) के अनुसार चलाया जाता था। अपनी 'फूट डालो और राज्य करो (Divide and rule) की नीति के अनुसार अंग्रेजी औपनिवेशिक सरकार ने कुछ प्रजातियों को, यथा सिक्ख, गुरखे, मराठे, पठान आदि को, लड़ाकू प्रजाति (martial rale) का दर्जा दे रखा था। गुरखों को भारतीय अंग्रेजी फौज में भर्ती करने के लिए पठानकोट, देहरादून, गोरखपुर, लहेरिया सराय, दार्जिलिंग, शिलांग आदि विशेष भरती केन्द्र खोले गए थे। यों तो सेवानिवृत्ति के बाद गोरखा सैनिक प्रायः वापस नेपाल चले जाते थे, परन्तु नेपाली तत्कालीन सरकार की दमनकारी विकासहीन असहिष्णु और दकियानूसं नीतियों के चलते, काफी गोरखे सैनिक और असैनिक नेपाली भाषी उपरोक्त स्थानों पर बसने लगे थे। नेपाल की तथाकथित गैर लड़ाकू मानी जाने वाली जातियाँ गोपालन, दुग्ध-व्यवसाय और कृषिजन्य व्यवसायों की खोज में पूर्वोत्तर भारत की पहाड़ियों की तरफ मुड़ी। फलस्वरूप 1947 आते-आते जहाँ एक तरफ भारतीय अंग्रेजी फौज में 10 गोरखा रेजिमेंट थे, वहीं पठानकोट से चलकर हिमाचल, उत्तरांचल, सिक्किम, दार्जिलिंग, दक्षिणी भूटान, अरुणाचल, असम और पूर्वोत्तर भारत के अन्य राज्यों में नेपाली भाषियों की काफी आबादी बस गई। 1950 की भारत-नेपाल मैत्री संधि के प्रावधान 7 के अनुसार नेपाल और भारतीय संघ एक-दूसरे के नागरिकों को व्यवसाय, आवागमन और निवास की सभी सुविधाएँ अपने नागरिकों के समान देने के लिए वचनबद्ध हैं। निरंकुश राणाशाही के युग में नेपाली प्रजा को शिक्षण, व्यवसाय, अभिव्यक्ति आदि के अधिकार प्राप्त नहीं थे, उसके विपरीत, बनारस, पटना, कलकत्ता,

दार्जिलिंग आदि नगरों के नेपाली भाषियों ने शिक्षण, साहित्य, प्रकाशन कला आदि के क्षेत्रों में उन्नतिकर नेपाली लोगों के लिए पुर्नजागरण का पथ प्रदर्शित किया। कालान्तर में इन क्षेत्रों के नेपाली बुद्धिजीवी नेपाली समाज के उत्थान के अग्रदूत बने। यही नहीं नेपाली जनता की आवाज और आकांक्षा की प्रतीक के रूप में नेपाली कांग्रेस की स्थापना इन्हीं बुद्धिजीवियों और भारतीय राजनैतिक चेतना में पले सजग नेजाओं ने कलकत्ते में की। शीघ्र ही नेपाली कांग्रेस और उसके समाजवादी साथियों ने भारत से राणाशाही के विरुद्ध सशस्त्र युद्ध छेड़ा, जिसमें अपने नेपाली साथियों के साथ भारतीय मुक्तिसेनाओं के सिपाहियों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। परन्तु एक राष्ट्रीय त्रासदी के फलस्वरूप राणाशाही के पतन के उपरान्त जनतंत्र का उदय नहीं, बल्कि विलासी, सत्ताविमुख और सत्ता की भूखी राजतंत्र की बहालीं का पथ प्रसस्त हुआ। फिर तो पाशा पलट गया और आदर्शवादी और लोक-कल्याणकारी शक्तियों के स्थान पर चाटुकार सामन्तशाही, दरबारी तत्त्वों का बोलबाला हो चला। सत्ता सुख से वंचित और राज प्रसाद में बन्दीप्राय नेपाल नरेश प्रजा की आशा और आकाक्षाओं से अपरिचित रहकर षड्यंत्र, दुस्साहस, बड़ेबोलेपन और दरबारी चाटुकारिता के शिकार बन गए। ऐसी स्थिति में जनतांत्रिक शक्तियाँ कमजोर होती गईं और नेपाल प्रतिक्रियावादी और पतनोन्मुख सामन्तीय शक्तियों का अखाड़ा बनकर रह गया।

फिर स्वाभाविक रूप में वर्तमान युग की कटुताओं से मुँह मोड़ भूतकालीन तथाकथित गौरवगाथाएँ और पराक्रमी विजय स्मृतियाँ निठल्ले जनमानस को प्रेरणा देती हैं। लोक गीतकार धर्म राज थापा की नेपाली कविता 'नेपाली कहाँ गयो' इसी दिशा में पहल करती हैं :

"हम नेपालियों को क्या हो गया है?
हमारे अपने सारे गीत खो गये हैं।
दो-दो बार युद्धक्षेत्र में जर्मनों से हम भारी पड़े हैं।
हमने सतलुज और क्रांगड़ा को फतह किया।
परन्तु आज हमारी आवाज, युद्ध का गगनभेदी नाद,
बिल्कुल सुना नहीं जाता।"

थोड़ी देर के लिए उपरोक्त कविता को कवि या गीतकार की कल्पना की उड़ान मानकर देखें तो लगता है कि नेपाल के एक वर्ग विशेष की महानेपाल सम्बन्धी मानसिकता राजनैतिक षडयंत्र का रूप ले चुकी है। इस सन्दर्भ में भारतीय या भूटानी सनसनी फैलाने वाले तत्त्वों को दरकिनार कर हमारे पास दो स्पष्ट दृष्टांत हैं।

प्रथमतः मनोज पंडित, ब्रिटिश प्रवासी नेपाली, ने महानेपाल पर डेढ़ घंटे चलने वाली फिल्म बनाई है। (www. Greater Nepal.com) स्मरणीय है कि इस फिल्म का

प्रदर्शन 2 दिसम्बर, 2006 को लन्दन विश्वविद्यालय स्थित School of Oriental African Studies (SOAS) में शाम के पाँच बजे किया गया। इस फिल्म में दिखाया गया है कि भारतीय संघ ने अवैधानिक रूप से नेपाल के पूरब, पश्चिम और दक्षिण में नेपाली क्षेत्रों को हड़प लिया है। इस फिल्म के माध्यम से दो बातें प्रचारित करने का प्रयास किया गया है : (1) नेपाल का इन क्षेत्रों पर वैधानिक अधिकार है और (2) इन क्षेत्रों में मान्य सीमा का अतिक्रमण हुआ है, जिससे नेपाली स्वार्थों की हानि हुई है। यह फिल्म प्रतिवर्ष सुगौली की संधि के हस्ताक्षरित होने के दिन दिखाई जाती है, जिससे फिल्मकार सम्वाद देना चाहता है कि सुगौली की संधि को निरस्त किया जाए और उसके मुताबिक नेपाल का तथाकथित क्षेत्र उसे वापस सौंप दिए जाएँ। ये सज्जन भारत नेपाल संधि के प्रारूप के प्रावधानों का लाभ उठा भारत के विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण का भारत विरोधी प्रयास में संलग्न हैं। द्वितीय, नेपाल के माओवादी महानेपाल लहर के कट्टर समर्थक रहे हैं। ये लोग सशस्त्र क्रान्ति को सत्ता प्राप्ति का एक मात्र मार्ग मानते हैं। इनकी मान्यता है कि असमान सुगौली की संधि के चलते नेपाल को अपनी तथा-कथित भूमि भारत को सौंपनी पड़ी। इस कारण ये लोग भारतीय संघ को अपना प्रबल शत्रु मानते हैं। CNN-IBN न्यूज चैनल के सम्वाददाता को अगस्त 2006 में माओवादी शिविर में महानेपाल का नक्शा दिखाया गया था जो वास्तव में वर्तमान नेपाल के अतिरिक्त भारतीय संघ के हिमाचल, उत्तरांचल, दार्जिलिंग, सिक्किम और उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों के उत्तरी जनपदों को मिलाकर बनता था। माओवादियों ने महानेपाल की प्राप्ति के लिए अपने सदस्यों को सदैव तत्पर रहने की हिदायत दे रखी है। उनके अनुसार भारतीय संघ का वास्तविक चरित्र विस्तावादी है और नेपाल को न्याय प्राप्ति के लिए सबसे पहले 1950 की भारत नेपाल मैत्री संधि को समाप्त करना चाहिए।

आज से करीब 25 वर्ष पहले दार्जिलिंग राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा (GNLF; Gorkha National Liberation Front) के सर्वेसर्वा सुभाष धीसींग ने दार्जिलिंग सम्बन्धी मांग के समर्थन स्वरूप नेपाल द्वारा महानेपाल की मांग की तरफ इशारा किया था। चूंकि सुभाषा धीसींग की राजनैतिक विश्वसनीयता संदेहास्पद थी, इस कारण उस समय महानेपाल समस्या पर गम्भीर विचार विमर्श नहीं हो पाया। स्मरणीय है कि अपने गोरखालैंड राज्य की मांग के सन्दर्भ में धीसींग ने बहुत-सारी बेसिर पैर की बातें की थीं। दूसरे सज्जन श्री दावा शेरींग शाही भूटान सरकार के विदेश मंत्री, ने 1990 के दशक के वर्षों में नेपाली मुल्क के भूटानी नगारिकों को महानेपाल का अग्रिम दस्ता बताया था। स्मरणीय है कि श्री शेरींग ने महानेपाल का हौवा भूटान सरकार द्वारा अपने हजारों-हजार नगारिकों को शरणार्थी शिविरों में भेजने को न्यायोचित बताने के क्रम में उठाया था। स्वाभाविक है कि श्री शेरींग की बात को भूटान की

तत्कालीन प्रजातीय संघर्ष-संदर्भ में देखा गया और उसकी तरफ उचित ध्यान नहीं दिया गया। परन्तु लगता है कि नेपाल का एक प्रबुद्ध तबका अपनी आधुनिक दयनीय राष्ट्रीय स्थिति से मुंह मोड़ एक तथा-कथित उदात्त ऐतिहासिकता के गौरव की मृगतृष्णा में व्यस्त है। इस कारण यह आवश्यक है कि महानेपाल की अवधारणा के विभिन्न आयामों पर तकर्संगत रूप से विचार किया जाए।

भाषाई और साहित्यिक संदर्भ : भारतीय संघ ने नेपाली/गोरखाली भाषा को एक भारतीय भाषा के रूप में मान्यता दी है। भारत के मुक्तवाता वरण में नेपाली साहित्य का विकास हुआ है। टेलीविजन/फिल्म से जन-भाषाओं को ही नहीं नेपाली भाषा को भी प्रश्रय मिला है। फलस्वरूप नेपाली भाषा नेपाल और उसके पूर्वी हिमालयी क्षेत्रों में एक सशक्त जन सम्पर्क माध्यम के रूप उभरी है। परन्तु पिछले दो दशकों से नेपाली मूल की जनजातिय भाषाएँ भी विकसित हुई हैं। सिक्किम राज्य ने लगभग एक दर्जन छोटी-मोटी जनजातीय भाषाओं को राज्यभाषा की मान्यता दे रखी है। इन भाषाओं में पाठ्यक्रम के अनुसार पाठ्यपुस्तकें लिखी जा रही हैं, उनके लिए स्कूलों में शिक्षक बहाल किए जा रहे हैं। जहाँ कहीं नेपाली साहित्यिक संसार समृद्ध है वहीं जनजातीय भाषाएँ अपनी अलग पहचान बनाने के क्रम में लिपि, शब्दकोष व्याकरण आदि आरम्भिक समस्याओं के समाधान में व्यस्त हैं। दर्जिलिंग जिले में जनभाषाओं का जोर अभी नहीं पकड़ा है।

व्यवसायिक प्रतिष्ठान और अर्थव्यवस्था का सन्दर्भ

नेपाल राज्य की अर्थव्यवस्था सामन्तशाही ही नहीं, बल्कि विकृत पूंजीवादी स्वरूप ले चुकी है, जिसमें एक अत्यन्त ही सम्पन्न वर्ग है दूसरी तरफ एक बड़ी आबादी गरीबी सीमारेखा के नीचे की जिन्दगी जी रही है। नेपाली अर्थ व्यवस्था की स्वतंत्रता सीमित है। नेपाल का एक वर्ग प्रच्छन्न रूप से भारतीय या ब्रिटिश फौज में काम करता है, परन्तु उसका एक बहुत बड़ा वर्ग जीविका की खोज में भारत के विभिन्न नगरों या विदेशों का रुख करता है। वहाँ अत्यन्त ही कम आय पर कार्यरत ये लोग काफी गरीबी का जीवन बिताते हैं और यथा सम्भव बचतकर अपने सम्बन्धियों को भेजते हैं।

महानेपाल के पीछे की राज्यव्यवस्था, राजनीति और राजकीय पद्धति

स्पष्टतः तथाकथित महानेपाल मध्यकालीन मानसिकता की उपज है, जब सशस्त्र संघर्ष से राज्यों की सीमाएँ बनाई या बिगाड़ी जाती थीं। वह युग सामन्तशाही का था, जिसमें आम जनता की आवाज को महत्त्व नहीं दिया जाता था। उस समय सार्वभौमिकता का अर्थ भी सापेक्षित होता था। प्रायः सीमान्तीय रजवाड़े एकाधिक

राज्यों को कर दिया करते थे। उन दिनों आज जैसा अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण नहीं था और न अन्तर्राष्ट्रीय संगठन ही विद्यमान थे। आज राज्यों की सीमाएँ बलपूर्वक नहीं बनायी या बदली जा सकती। ऐसा करने पर अन्तर्राष्ट्रीय जनमानस, संयुक्तराष्ट्रसंघ, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय और अन्य मंच हैं, जिनकी अनदेखी नहीं की जा सकती। आज किसी भी देश की सीमा बदलना, विशेषकर वहाँ की जनता की इच्छा के विपरीत, लगभग असम्भव है। इस सन्दर्भ में अफ्रीकी महादेश का उदाहरण समीचीन होगा। पिछली शताब्दी में ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन, पुर्त्तगाल, हालैण्ड, बेल्जियम आदि औपनिवेशिक राष्ट्रों ने मिलकर अफ्रीकी महादेश को वहाँ की जनजातियों की मनसा की उपेक्षा का अपने उपनिवेशों में बाँट डाला। बीसवीं सदी के उपरार्द्ध में ये भूतपूर्व उपनिवेश एक-एक कर स्वतंत्र होने लगे। परन्तु किसी भी कोने से उनकी सीमाओं के पुर्ननिर्धारण करने की आवाज नहीं उठी। क्योंकि आशंका थी कि ऐसा काने से किसी समस्या का समाधान नहीं; बल्कि उल्झन अधिक होगी।

इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य बात है कि भारतीय संघ पिछले छः दशकों से गणतांत्रिक देश है; जहाँ नियम पूर्वक प्रति पाँच वर्षों में चुनाव आयोजित किये जाते हैं और जनता के चुने हुए प्रतिनिधि विधिसम्मत प्रशासन चलाते हैं। संघ सरकार के संचालन के लिए संविधान विहित रूप से अपना प्रतिनिधि भारतीय संसद में चुनकर भेजते हैं। उसके विपरीत नेपाल का पिछले साठ साल का इतिहास काफी उतार-चढ़ाव का रहा है। क्रूर और दमनकारी राणाशाही का अन्त सशस्त्र क्रान्ति और भारतीय कूटनीति से सम्भव हो पाया 1950 का दशक प्रजातांत्रिक प्रयास की असफलता का इतिहास बनकर रह गया। 1960-1990 के तीस वर्ष शाहवंशी नरेशों द्वारा पंचायती प्रणाली के नाम पर राजशाही की पुर्नस्थापना के वर्ष रहे। 1990 की दूसरी जनतांत्रिक पहल नेपाली राजनीतिज्ञों के निकम्मेपन और अयोग्यता की कहानी बयान करती है। यह ऐसा समय था, जबं दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ जनतन्त्र की कीमत पर प्रभावशाली बनीं। एक तरफ तो नेपाल नरेश और उनके सामन्तीय समर्थक राजतन्त्र की पूर्ण रूपेण स्थापना करने में व्यस्त दिखे; तो दूसरी तरफ, माओवादी सहस्त्र क्रान्तिकारी नेपाल के सुदूर क्षेत्रों के प्रशासकों को बलपूर्वक हटाकर साम्यवादी मुक्त क्षेत्र (Liberatel zone) घोषित कर रहे थे। अप्रैल 2006 में जनाक्रोश इतना बढ़ा कि अंतिम शाहवंशी नरेश ज्ञानेन्द्र वीर विक्रम शाह को पदत्याग करना पड़ा; राष्ट्रीय संवैधानिक निर्मात्री सभा के लिए चुनाव हुए और उसमें सारी अपेक्षाओं के विरुद्ध माओवादियों को सर्वाधिक स्थानों पर विजयश्री प्राप्त हुई। उन्होंने सरकार भी बनायी, परन्तु सरकार चला नहीं पाए। एक वर्ष के अन्दर ही माओवादी प्रधानमन्त्री प्रचण्ड को पद त्याग करना पड़ा। फिर काफी मान-मनौवल के बाद एक दूसरी गैरमाओवादी सरकार बनी, जिसक सामने 28 मई, 2010 तक नेपाल का संविधान बनाने का

असम्भव दायित्व पड़ा हुआ है। आजकल नेपाल, अराजकता, दिशाहीनता संक्रमण और नेतृत्वहीनता से ग्रस्त है। उसकी न कोई स्पष्ट दिशा है न कोई नेतृत्व और न स्पष्ट आवाज। ऐसे नेपाल में माओवादी जिस महानेपाल की पहल कर रहे हैं उस नेपाल के भूतपूर्व प्रधानमंत्री और नेपाली कांग्रेस अध्यक्ष गिरिजा प्रसाद कोइराला ने ठीक ही 'रूग्ण मानसिकता की उपज' (a product of unsound mind) बताया था।

इस संदर्भ में दो बातों का होना चिन्ताजनक है। सीमा के अराजक तत्त्वों द्वारा सीमा निर्धारण के स्तंभों का हटाया जाना तथा नेपाल में चीन का बढ़ता प्रभाव।

समाचार है कि भारतीय भूमि पर नेपाली नागरिकों ने कब्जा जमा रखा है। नेपाली माओवादियों और भारत विरोधी तत्वों की नजर अब खुली भारतीय सीमा पर एक हजार एकड़ भूमि पर लगी है। यह बात सशस्त्र सीमा बल (एसएसबी) के पटना सीमांत के तत्कालीन आईजी श्याम सिंह ने स्वीकारी है। उन्होंने कहा है कि केन्द्रीय गृह मन्त्रालय को इस सन्बन्ध में रिपोर्ट भेजी गई है। यह दो देशो का मामला है। लिहाजा वे कुछ नहीं कर सकते।

सीमा विवाद खड़ा करने को हटाए जा रहे खंभे

रिपोर्ट के मुताबिक नेपाली माओवादियों और भारत विरोधी ताकतों की सक्रियता इस भूमि पर बढ़ गई है। कई बार नो मेंस लैंड पर नेपाली माओवादियों ने अपना झंडा फहराया है, जिससे दोनों देशों के बीच तनाव पैदा होता रहा है। इस सम्बन्ध में बिहार के कई थानों में मामला भी दर्ज हो चुका है। गृह मन्त्रालय ने नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्र के सभी जिलाधिकारियों और पुलिस कप्तानों को सतर्क रहने के निर्देश दिए हैं। आईएसआई एक अन्य पड़ोसी राष्ट्र की मदद से भारत-नेपाल की खुली सीमा पर विवाद कराने पर तुली है।

सीमा विवाद खड़ा करने को हटाए जा रहे खंभों की रिपोर्ट में बताया गया है कि नेपाल से लगे कुल 1700 किलोमीटर क्षेत्र में भारत विरोधी तत्व सीमा पर लगे खंभे नष्ट कर रहे हैं। बिहार-उत्तर बंगाल की सीमा से सटे सीतामढ़ी, बाल्मीकि नगर, पीपराकोठी, जयनगर, मधुबनी, बीरपुर, बथनाहा, किशनगन्ज, दार्जिलिंग, सिक्किम और नेपाल के सप्तरी में कई ऐसे स्थान हैं, जो अंतर्राष्ट्रीय विवाद को जन्म दे सकते हैं। उत्तर बंगाल एसएसबी सेकटर मुख्यालय के तहत कुल 3000 किलोमीटर क्षेत्र आता है। किशनगंज जिले के अधीन खंभा संख्या 130 से 132 तक नो मेंस लैण्ड पर लोगों ने कब्जा कर लिया है। इस जमीन पर दिघलबैंक थाने की काटाबस्ती निवासी मोहम्मद हबीब अली समेत आठ परिवार बसे हैं। पिलर संख्या 133 से 135 के निकट नेपाली पुलिस चौकी स्थापित है। पिलर संख्या 137 से 139 गायब हैं। यह खुलासा

नेपाल में माओवादी कमांडर रामबहादुर खड़का के नेतृत्व में हुई माओवादियों की महत्त्वपूर्ण बैठक के बाद हुआ है।

भारतीय सीमा तक पहुँच बना रहा चीन

झापा जिले के काकड़भीट्टा, भद्रपुर, इलाम के पशुपतिनगर, मेंची तथा अन्य कई ऐसे स्थानों को चिन्हित किया जा चुका है, जहां नो मेंस लैंड के सटे रास्ते का निर्माण कराया जाएगा। यह रास्ता सीधा चीन से जुड़ेगा। वर्ष के अन्त तक चीन नेपाल में भारतीय नो मेंस लैण्ड से जुड़े क्षेत्र में 15 सौ किलोमीटर लम्बी सड़क बनाने की तैयारी में है। यह सड़क नारायण घाट से वीरगंज तक जाएगी, जिसे बाद में झापा से जोड़ दिया जाएगा। माओवादियों की मंशा है कि भारतीय भू-भाग को छूने वाले पुल और सड़क पर भारत का कोई दावा न हो। सीमांकन कर स्तम्भ लगाने का कार्य वर्ष 1994 से ठप्प है।

सन्दर्भ

1. Dixit, K.M. 'Looking for Greater Nepal' Himal, March-April, 1993, p 15-19
2. Dixit, K.M., 2003, *'Myth Making of Greater Nepal'* in The *Napalis is Northeaol India: A Community in Search of Indian* ..... Induv, Publishing Company, New Delhi, p.p. 321-38
3. Sinle, AC, 2008] edited by Sinha, AC and Subba. *TB Sikkim: Feudal and Democratic*, Indus Publishing Company, New Delhi.